International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 6 No. 40 September - October - 2025

भारत के आदिवासी समुदायः अतीत, वर्तमान और भविष्य

प्राचार्य डॉ. बळीराम राख
वसंतदादा पाटील महाविद्यालय, पाटोदा
Corresponding Author – प्राचार्य डॉ. बळीराम राख
DOI - 10.5281/zenodo.17662099

सार (Abstract):

भारत एक बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश है, जिसकी विविधता में आदिवासी समुदाय एक विशेष पहचान रखते हैं। भारत में लगभग 10 करोड़ से अधिक लोग आदिवासी समुदायों से संबंध रखते हैं, जो कुल जनसंख्या का लगभग 8-9 प्रतिशत हिस्सा बनाते हैं। इन्हें भारत का जनजातीय समाज भी कहा जाता है। इन समुदायों का जीवन-प्रणाली, संस्कृति, परंपराएँ और ज्ञान परंपरा न केवल भारत की प्राचीन धरोहर का हिस्सा है, बल्कि आज भी यह समाज की मौलिकता और प्रकृति-संबंधी जीवन दृष्टि को संरक्षित किए हुए है। इस शोध पत्र में आदिवासी समुदाय के अतीत, वर्तमान और भविष्य का विवेचन किया गया है।

भारत के आदिवासी समुदाय ऐतिहासिक रूप से सांस्कृतिक विविधता, प्रकृतिनिष्ठ जीवन–दर्शन और स्थानीय ज्ञान–परंपराओं के संवाहक रहे हैं। औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान में तीव्र बाज़ारीकरण, भूमिगत, वन संसाधनों पर बढ़ते दबाव, विस्थापन, और विकास–नीतियों के असंतुलित प्रभावों ने इनके जीवन–जगत को गहरे रूप में प्रभावित किया है। यह शोध–पत्र ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, संवैधानिक–कानूनी ढाँचा, समकालीन सामाजिक–आर्थिक चुनौतियाँ, उत्कृष्ट प्रथाएँ/केस–स्टडी, और भविष्य की नीतिगत दिशा पर समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। निष्कर्षतः, अधिकार–आधारित विकास, सांस्कृतिक–भाषाई संरक्षण, सहभागी शासन (PESA), वनाधिकारों का प्रभावी क्रियान्वयन (FRA), और जनजातीय ज्ञान–प्रणालियों के समेकन से न्यायसंगत, समावेशी और टिकाऊ भविष्य संभव है।

की–वर्ड्स: अनुसूचित जनजाति, वनाधिकार अधिनियम, PESA, स्वशासन, सांस्कृतिक संरक्षण, आजीविका, विस्थापन, स्वास्थ्य–शिक्षा।

प्रस्तावना:

भारत में आदिवासी समुदाय न केवल एक सामाजिक श्रेणी हैं, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन, बहुभाषिकता और स्थानीय लोकतंत्र की जीवित परंपराएँ भी हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार ST आबादी का राष्ट्रीय हिस्सेदारी ~8.6% रही—जो कि विविध भौगोलिक क्षेत्रों (पूर्वोत्तर, मध्य भारतीय पट्टी, पश्चिमी घाट, अंडमान–निकोबार आदि) में फैली है। ऐतिहासिक रूप से ये समुदाय वन–भूमि, जल–जंगल–ज़मीन से अपने जीवन–यापन, संस्कृति और पहचान प्राप्त करते हैं। समकालीन भारत में तीव्र आधुनिकीकरण, अवसंरचनात्मक परियोजनाओं, खनन और वनों के संरक्षण/व्यवस्थापन के औपचारिक ढाँचों ने इनके अधिकारों, आजीविकाओं और सांस्कृतिक निरंतरता के सामने नए–नए प्रश्न खड़े किए हैं। यह

अध्ययन इसी बहुआयामी संक्रमण को समझने का प्रयास है।

आदिवासी समुदाय भारत के मूलनिवासी माने जाते हैं। वे प्राचीन काल से ही प्रकृति के समीप रहकर अपना जीवन यापन करते आए हैं। शिकारी-संग्राहक, पशुपालन और झूम खेती इनका प्रमुख आजीविका साधन था। आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति पर आधारित रहा है। वे पर्वत, वन, नदियों और पशुओं की पूजा करते हैं। उनकी लोककथाएँ, लोकगीत, नृत्य (जैसे गोंड जनजाति का कर्मा नृत्य, संथालों का सोहराय नृत्य, उरांवों का झुमर) उनकी सामूहिक चेतना का दर्पण हैं। औषधीय पौधों की जानकारी, कृषि तकनीक, जल संरक्षण पद्धति और लोक स्थापत्य इनकी मौलिक देन रही है। समानता आधारित जीवन, सामूहिक श्रम और साझेदारी की भावना इनके समाज की विशेषता रही है।

आधुनिक भारत में आदिवासी समुदाय कई चुनौतियों और अवसरों से गुजर रहा है। भूमिहीनता, विस्थापन (बड़े बांध, खनन और औद्योगिक परियोजनाओं से), और सीमित रोजगार अवसरों ने उनकी आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया है। आदिवासी इलाकों में शिक्षा का स्तर अभी भी निम्न है। हालांकि, कई शैक्षणिक योजनाओं और आश्रमशालाओं के माध्यम से शिक्षा का प्रसार हो रहा है। कुपोषण, मातृ-शिशु मृत्यु दर, और चिकित्सा सुविधाओं की कमी अब भी प्रमुख समस्याएँ हैं। शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से आदिवासी संस्कृति और भाषाएँ धीरे-धीरे संकटग्रस्त हो रही हैं। संविधान के पाँचवीं और छठी अनुसूचियों, पेसा अधिनियम (1996) और वन अधिकार अधिनियम (2006) ने आदिवासी अधिकारों को संवैधानिक मान्यता दी है। कई आदिवासी नेता राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर राजनीति में सक्रिय हैं।

आदिवासी समाजों का इतिहास स्थानीय स्वायत्तता, प्रकृति–केंद्रित उत्पादन–उपभोग और सामुदायिक स्वामित्व की धारणा से जुड़ा रहा है। पूर्व–औपनिवेशिक काल: प्रथागत अधिकार, घुमंतू/अर्ध–घुमंतू तथा स्थायी खेती–वन–आधारित जीवन–यापन। औपनिवेशिक हस्तक्षेप: वन अधिनियमों और राजस्व–वसूली प्रणालियों ने प्रथागत अधिकारों को सीमित किया; खनन/बागान अर्थव्यवस्था में श्रम–आकर्षण व विस्थापन बढ़ा। स्वाधीनता–उपरांत: पाँचवी/छठी अनुसूची क्षेत्रों का प्रावधान; परंतु 'राष्ट्रीय विकास' परियोजनाओं (बाँध, खदान, औद्योगिक गलियारे) के कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन और पुनर्वास–समस्याएँ उभरीं, जिससे आजीविका–संकट और सांस्कृतिक विघटन के प्रश्न गहरे हुए।

अनुच्छेद 15(4), 16(4), 46: सामाजिक–शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों, विशेषकर ST के शैक्षिक/आर्थिक हितों का संरक्षण। अनुच्छेद 244, पाँचवी–छठी अनुसूचियाँ: आदिवासी बहुल क्षेत्रों में विशेष प्रशासनिक प्रावधान, स्वायत्त परिषदों/ग्राम–स्वशासन को बल। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996—PESA: अनुसूचित क्षेत्रों में ग्रामसभा को केंद्र में रखकर सहभागी शासन; भूमि–स्थानांतरण, खनन–उत्खनन, लघु–वन उपज (MFP) और सांस्कृतिक संसाधनों पर निर्णय–साझेदारी पर बल। अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006—FRA: व्यक्तिगत, सामुदायिक और सामुदायिक वन संसाधन (CFR) अधिकारों की कानूनी मान्यता; ऐतिहासिक अन्याय का परिष्कार। अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989: हिंसा/भेदभाव के विरुद्ध दंडात्मक संरक्षण। शिक्षा/स्वास्थ्य/आजीविका योजनाएँ: एकलव्य मॉडल

रेजिडेंशियल स्कूल (EMRS), समग्र शिक्षा, जनजातीय छात्रवृत्ति, वान–उपज MSP, ट्राइफेड के माध्यम से विपणन–सहायता आदि। इन प्रावधानों का प्रभाव राज्यों/क्षेत्रों में क्रियान्वयन–क्षमता, संस्थागत समन्वय और ग्रामसभा की वास्तविक सशक्तता पर निर्भर रहा है—कहीं उल्लेखनीय प्रगति दिखती है, तो कहीं प्रक्रिया/पहुंच की चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

शिक्षा: प्राथमिक–स्तर पर नामांकन बढ़ने के बावजूद ड्रॉप–आउट, भाषा–अंतर, दूरस्थ बसाहटें, बालिका–शिक्षा और माध्यम–आधारित बाधाएँ कायम। स्वास्थ्य/पोषण: मातृ–शिशु स्वास्थ्य सूचकांकों में पिछड़ापन; मलेरिया/एनीमिया जैसी समस्याएँ; पारंपरिक चिकित्सा–ज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य–सेवाओं के बीच पुल की आवश्यकता। आजीविका: कृषि–वन–आधारित आय, MFP (महुआ, तेंदू, सालबीज, शहद आदि), पशुपालन/हस्तशिल्प। बाज़ार–श्रृंखलाओं में मूल्य–वृद्धि का हिस्सा समुदायों तक सीमित; कौशल–विकास/स्थानीय उद्यमिता की संभावनाएँ। भूमि–वन अधिकार: FRA के तहत CFR मान्यता में क्षेत्रीय विषमता; सीमांकन/नक्शानवीसी, अभिलेखीय साक्ष्य, और अंतर्विभागीय समन्वय चुनौती। विस्थापन–पुनर्वास: खनन/वृहद परियोजनाओं से सामाजिक–सांस्कृतिक ताने–बाने पर प्रभाव; न्यायोचित पुनर्वास–पुनर्स्थापन और दीर्घकालीन आय–पुनर्निर्माण का अभाव। सांस्कृतिक–भाषाई संरक्षण: जनजातीय भाषाओं/लिपियों का अंतरपीढ़ी हस्तांतरण घटता; लोककला, पर्व, पारंपरिक संस्थाएँ (गोटुल/दोरबार आदि) परिवर्तित परिदृश्य से जूझतीं।

PESA वाले क्षेत्रों में ग्रामसभा का वास्तविक सशक्तीकरण असमान; Gram Sabha–Line Dept–Forest Dept–Revenue Dept के बीच समन्वय आवश्यक। सामाजिक–लेखापरीक्षा, सामुदायिक मॉनिटरिंग, और महिला–नेतृत्व की भागीदारी बढ़ रही है, पर संस्थागत समर्थन की जरूरत। CFR आधारित सामुदायिक वन–प्रबंधन: जिन गाँवों में सामुदायिक वन संसाधन अधिकार मान्य हुए, वहाँ MFP की संगठित–तोड़ाई, प्राथमिक–प्रसंस्करण, सामूहिक विपणन से आय में वृद्धि और वन–पुनर्जीवन दोनों देखे गए। ग्रामसभा–नेतृत्वित निर्णय: खनन/पत्थर–खदान जैसे प्रस्तावों पर पूर्व–अनुमति/पूर्व–परामर्श (FPIC के समतुल्य सिद्धांत) की मांग; जैव–विविधता रजिस्टर, सामाजिक–उपलब्धता मानचित्रण जैसे उपकरणों का उपयोग। भाषा–आधारित बहुभाषी शिक्षा (MLE): प्रारम्भिक कक्षाओं में मातृभाषा–आधारित पाठ्य सामग्री से सीखने के स्तर व उपस्थिति में सुधार। जनजातीय उद्यमिता: शहद, लाख, तसर–रेशम, हस्तशिल्प, मिलेट/कुटकी–आधारित मूल्य–श्रृंखलाएँ; ट्राइफेड/एमएसपी के साथ स्थानीय FPO/SHG का एकीकरण।

आदिवासी विकास का 'मॉडल' यदि केवल संसाधन–दोहन और नकदी–आर्थिक समावेशन तक सीमित रहे, तो सांस्कृतिक–पारिस्थितिकी और समुदाय–केंद्रित शासन कमजोर पड़ता है। इसके उलट, अधिकार–आधारित, बहु–हितधारक और प्रकृति–समन्वित मॉडल—जहाँ ग्रामसभा निर्णय–केंद्र हो, और राज्य की संस्थाएँ सुगमक बनें—टिकाऊ परिणाम देते हैं। सामुदायिक पूँजी बनाम भौतिक पूँजी: सामाजिक–सांस्कृतिक संस्थाएँ, परंपरागत ज्ञान, और सामुदायिक विश्वास—ये 'अदृश्य पूँजियाँ' हैं जिन पर नीतिगत निवेश कम है। डेटा–अंतर: जनजातीय सूचकांकों का सूक्ष्म, क्षेत्र–विशिष्ट डेटा सीमित; नीतियाँ "वन–साइज–फिट्स–ऑल" हो जाती हैं। लैंगिक आयाम: महिला–संगठनों, वन–उपज अर्थव्यवस्था, जल–ईंधन–चारा, और घरेलू/सामुदायिक श्रम में महिलाओं की केंद्रीय

भूमिका—पर निर्णय–स्थानों पर उनका प्रतिनिधित्व बढ़ाने की आवश्यकता। जलवायु–परिवर्तन: सूखा/अतिवृष्टि/वनाग्नि जैसी घटनाएँ आजीविका और खाद्य–सुरक्षा को प्रभावित कर रही हैं; आदिवासी ज्ञान–प्रणालियाँ अनुकूलन की प्राकृतिक रणनीतियाँ प्रदान करती हैं—इन्हें योजनाबद्ध ढंग से सम्मिलित करना होगा।

CFR की त्वरित मान्यता, स्पष्ट सीमांकन, रिकॉर्ड–अपडेशन; ग्रामसभा को परियोजनाओं पर पूर्व–अनुमति/परामर्श का प्रभावी अधिकार; विभागों के बीच प्रोटोकॉल–आधारित समन्वय। लघु–वन–उपज पर न्यूनतम समर्थन मूल्य का विस्तार, गुणवत्ता–मानक, प्राथमिक–प्रसंस्करण केंद्र; जनजातीय एफपीओ/एसएचजी के लिए क्रेडिट–लिंक, जोखिम–बीमा, बाज़ार–सूचना; स्थानीय फूड सिस्टम (मिलेट, वन–उत्पाद) को पोषण–योजनाओं से जोड़ना। मातृभाषा–आधारित बहुभाषिक शिक्षा, स्थानीय पाठ–सामग्री निर्माण में समुदाय की भागीदारी; EMRS/आवासीय विद्यालयों में सांस्कृतिक–कैलेंडर, कला–शिक्षा और जीवन–कौशल पर बल; उच्चशिक्षा/रिसर्च में जनजातीय अध्ययन केंद्रों की क्षमता–वृद्धि।

प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, मोबाइल हेल्थ यूनिट, टीबी/मलेरिया नियंत्रण; पारंपरिक औषध–ज्ञान का दस्तावेजीकरण और सुरक्षित–एकीकरण; आयोडीन/आयरन–फोलिक/सूक्ष्म–पोषक तत्वों की आपूर्ति व पोषण–उद्यान। सामाजिक प्रभाव आकलन (SIA) की अनिवार्यता और स्वतंत्रता; नकद–प्रतिपूर्ति से आगे बढ़कर भूमि–के–बदले भूमि, कौशल–पुनर्संरचना, दीर्घकालीन आजीविका–योजनाएँ; सांस्कृतिक/धार्मिक स्थलों और सामुदायिक संस्थाओं की पुनर्स्थापना। समुदाय–स्वामित्व वाले डेटा, ग्राम–स्तरीय डैशबोर्ड; दूरस्थ कनेक्टिविटी, टेली–एजुकेशन/टेली–हेल्थ; लाभार्थी ट्रैकिंग में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका। सामुदायिक वन–प्रबंधन को जलवायु–वित्त/कार्बन–क्रेडिट से जोड़ना, लाभ–साझेदारी की स्पष्ट नीति; सूक्ष्म–सिंचाई, जल–संरक्षण, पारंपरिक बीज–बैंक, बहुफसली प्रणालियाँ।

आदिवासी समाज का भविष्य शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण और सतत विकास की दिशा पर निर्भर करता है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास से आदिवासी युवा आत्मनिर्भर हो सकते हैं। लोकनृत्य, लोकगीत, पारंपरिक चिकित्सा पद्धति और भाषाओं को संरक्षित करने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण होगी। आदिवासी क्षेत्रों में विकास योजनाओं का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओं और पर्यावरण संरक्षण के साथ होना चाहिए। डिजिटल साक्षरता और तकनीकी साधनों का उपयोग आदिवासी समाज को मुख्यधारा से जोड़ सकता है, साथ ही उनकी कला और उत्पादों को वैश्विक स्तर पर पहुँचाने का माध्यम बन सकता है। महिलाओं की भागीदारी, सहकारी समितियों और स्व-सहायता समूहों के माध्यम से आदिवासी समाज में आत्मनिर्भरता बढ़ सकती है।

निष्कर्ष:

भारत के आदिवासी समुदायों का भविष्य अधिकार–आधारित और समुदाय–केंद्रित दृष्टिकोण पर निर्भर है, जिसमें ग्रामसभा निर्णय–केंद्र बने, FRA–PESA का वास्तविक क्रियान्वयन हो, और शिक्षा–स्वास्थ्य–आजीविका नीतियाँ सांस्कृतिक–भाषाई संदर्भों के अनुकूल रूप से डिज़ाइन हों। विकास–परियोजनाओं की सफलता केवल भौतिक पूँजी से नहीं,

बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक पूँजी और पारिस्थितिक संतुलन के संरक्षण से मापी जानी चाहिए। स्थानीय ज्ञान–प्रणालियों को नीति–डिज़ाइन में सम्मानपूर्वक समाहित कर हम एक समतामूलक, लचीला और टिकाऊ भविष्य गढ़ सकते हैं। भारत के आदिवासी समुदाय अतीत से ही प्रकृति और संस्कृति के संरक्षक रहे हैं। वर्तमान में वे अनेक सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, लेकिन संवैधानिक अधिकारों, सरकारी योजनाओं और स्वयं की जीवटता के कारण वे आगे बढ़ने की राह पर हैं। भविष्य में यदि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सांस्कृतिक संरक्षण के क्षेत्र में प्रभावी कदम उठाए जाएँ, तो आदिवासी समाज न केवल आत्मनिर्भर बनेगा, बल्कि भारत की सांस्कृतिक विविधता और सतत विकास के मॉडल के रूप में भी स्थापित होगा।

संदर्भ–सूची (Suggested References):

1. Bhuria Committee Reports (पंचायती राज/जनजातीय स्वशासन संदर्भित)।
2. Elwin, V. (विविध रचनाएँ) — आदिवासी जीवन–संस्कृति पर प्रारम्भिक नृविज्ञान कार्य।
3. Baviskar, A. (विविध कार्य) — वन, विकास और समुदाय।
4. Sundar, N., Jeffery, R., & Thin, N. (eds.). *Development and Deprivation in the Indian Subcontinent.*
5. Kapoor, M. et al. — CFR/Community Forest Management पर समकालीन अध्ययन।
6. TRIFED/ MFP–MSP Guidelines और मूल्य–श्रृंखला रिपोर्टें।
7. NFHS (National Family Health Survey) — स्वास्थ्य/पोषण संकेतक।
8. Rao, V., & Walton, M. *Culture and Public Action* — नीतिगत विमर्श में संस्कृति की भूमिका।
9. विभिन्न राज्य सरकारों के पुनर्वास–पुनर्स्थापन (R&R) नीति दस्तावेज़।
10. UNDRIP (2007) — Indigenous Peoples के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा (संदर्भ–तुलना हेतु)।